International Journal of Applied Research 2016; 2(2): 79-81

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2016; 2(2): 79-81
www.allresearchjournal.com
Received: 09-12-2015
Accepted: 05-01-2016

डॉ. शिवदत्त शर्मा
पूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग
राजकीय महाविद्यालय ढलियारा
कांगडा हिप्र

Correspondence:
डॉ. शिवदत्त शर्मा
पूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग
राजकीय महाविद्यालय ढलियारा
कांगडा हिप्र

हिन्दी आलोचना–उद्‌भव एवं विकास

डॉ. शिवदत्त शर्मा

आलोचना–अर्थ एवं स्वरूप

आलोचना शब्द की व्युत्पत्ति मूलतः लोच् धातु में उपसर्ग आ तथा ल्युट्–अन् प्रत्यय के योग से हुई है। संस्कृत शब्द कोष के अनुसार लोच् शब्द का अर्थ–देखना है।स्पष्ट है कि किसी वस्तु या रचना का सम्यक् विवेचन अथवा मूल्यांकन आलोचना कहलाता है।

हिन्दी में आलोचना के संकुचित अर्थ को ध्याान में रखते हुए समालोचना शब्द का प्रचलन अधिक देखने को मिलता है। आलोचना और समालोचना दोनों ही समानार्थक शब्द हैं, परन्तु कुछ लोगों ने आलोचना को दोषारोपण के अर्थ में ग्रहण कर लिया इस दोष के निवारण के लिए अब अधिकतर समालोचना शब्द ही प्रयोग में लाया जाता है ताकि इस तरह किसी रचना के गुण– दोष का समान रूप से मूल्यांकन करने के लिए समालोचना शब्द को ही अधिमान दिया जाने लगा। वर्तमान में इस पद्धति के लिए समीक्षा शब्द का अधिक प्रयोग हो रहा हैं। समीक्षा शब्द का संस्कृत ग्रंथों में भी प्रयोग हुआ है–

अन्तर्भाष्य अवान्तरार्थ विच्छेदश्च समीक्षा।– अर्थात् किसी रचना के गुण–दोषों तक सीमित न रहकर जब उसकी आन्तरिक प्रकृति अथवा विशेषता और अवान्तरार्थों की छानबीन की जाए, तब उसे समीक्षा कहा जाता है। काव्य शास्त्रीय विवेचन भी आलोचना का एक अंग ही है।

हिन्दी आलोचना–उद्‌भव एवं विकास–

वास्तव में किसी भी भाषा के उद्‌भव के साथ ही उसकी आलोचना का भी उद्‌भव मानना चाहिए, परन्तु जिस प्रकार हिन्दी साहित्य विशेषकर काव्य का मूल संस्कृत काव्य से सम्पृक्त है,उसी प्रकार हिन्दी आलोचना का मूल भी संस्कृत आलोचना से जुडा हुआ है।फिर भी इसे पूर्णतः संस्कृत से ही जुडा हुआ ही मान लिया जाए तो अन्याय होगा, क्यों कि आदि कालीन, भक्तिकालीन, व रीतिकीन हिन्दी आलोचना संस्कृत के काव्य शास्त्र से जुडी है परन्तु वर्तमान कालीन हिन्दी आलोचना या समीक्षा पाश्चात्य व्यावहारिक समीक्षा से जुडी है।

हिन्दी आलोचना का प्रारम्भिक स्वरूप हमें आदि कालीन साहित्यकार विद्यापति की रचना में उपलब्ध हो जाता है। 1 इससे पूर्व भी आलोचना का अस्तित्व अवश्य सम्भव है, इसे जानने के लिए यद्यपि अनेक प्राचीन ग्रंथ उपलब्ध नहीं हैं। हिन्दी आलोचना के कमिक विकास को देखने के लिए हिन्दी साहित्य को विभाजित करके सरलता से जाना जा सकता है।

आदि कालीन आलोचना

यह सत्य है कि आदिकालीन एवं भक्तिकालीन रचनाओं में किसी स्वतंत्र चिंतन के संकेत नहीं मिलते, परन्तु कुछ कवियों की रचनाओं में उनकी आलोचनात्मक दृष्टि तथा काव्य–सिद्धान्त सम्बन्धी विचार अवश्य मिलते हैं । आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने भी इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए इस काल की अप्रत्यक्ष आलोचना को नकारा नहीं जा सकता। उनका मत है कि– उनका अवमूल्यन कदापि नहीं किया जा सकता, क्योंकि भावी आलोचना के विशाल प्रसाद की नींव के रूप में वह महत्वपूर्ण है।

विद्याापति का एक सन्दर्भ इस काल की आलोचना का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है। विद्यापति ने अपनी प्रसिद्ध रचना कीर्तिलता में आलोचनात्मक दृष्टि का परिचय देते हुए कहा है कि– काव्य तो लोक–हृदय के लिए आह्‌लाद कारक वस्तु है, दुर्जनों के उपहास से उसकी आभा कभी मलिन नहीं पड सकती–

बालचन्द बिज्जावड भाषा, दुछुनहिं लगई दुज्जन हासा।
ओ परमेसर हर–सिरकोई, ई गिच्चइ नाउर मन मोहई।।

2 भक्ति–काल में आलोचना का स्वरूप

इस काल में हिन्दी आलोचना का अधिक विकास दिखाई नहीं देता, न ही इस काल में आदि काल की तरह किसी स्वतंत्र ग्रंथ की रचना हुई। फिर भी यह तो सत्य है कि अनेक कवियों के काव्य में काव्य–सिद्धान्त से सम्बन्धित बडी विशद चर्चा अवश्य देखने को मिलती है। इन कवियों ने बडे ही विवेक पूर्ण ढंग से इन क्लिष्ट विषयों पर अपने स्वतंत्र विचार प्रस्तुत किए हैं ,जो हिन्दी साहित्य की आलोचना का प्रारम्भिक रूप है। इन कवियों में मुख्यतः जायसी, सूरदास, तुलसीदास, रहीम नन्ददास आदि की रचनाओं में इस आलोचना का आरम्भिक स्वरूप दिखाई देता है। जायसी ने अपनी प्रसिद्ध रचना पद्मावत् में काव्यरचना के मुख्य उद्देश्यों पर प्रकाश डाला है । जायसी ने स्पष्ट कहा है कि काव्य रचना का उद्देश्य यश अथवा कीर्ति मुख्य है। उन्होंने संस्कृत आचार्यों की ही तरह ही पद्मावत् में यश की कामना की है,जो आचार्य दण्डी, वामन, आदि के काव्य सिद्धान्तों के ही अनुकूल है।2

मुहम्मद कवि यह जोरि सुनावा। सुना सो परि प्रेम की पावा।।
औ मैं जानि गीत अस कीन्हा। मकु यह रहै जगत महँ चीन्हा।।
धनि सोई जसकीरती जासू। फूल मरै पै मरै न बासू।।
कोई न जगत जस बेचा, कोई न लीन्ह जस मोल।
जो यह पढै कहानी, हमहिं संवरै दुई बोल।।

इसी तरह इसी काल के मूर्धन्य कवि गोस्वामी तुलसी दास ने तो रामचरितमानस में काव्यरचना के उद्देश्य को अपनी ओर से स्पष्ट कर दिया है–स्वान्तः सुखाय रघुनाथ गाथा। उन्होंने साहित्यिक रचना को लोक हित से भी जोडकर देखा है–

कीरति भनिति भलि सोई। सुरसरिसम सब कंह हित होई।।

इसी प्रकार एक और स्थान पर भी तुलसी ने कुन्तक की वक्रोक्ति के अनुरूप ही शब्दार्थ की व्यंजना शब्द में अर्थ–शक्ति के समावेश की चर्चा की है–

गिरा अरथ जल–बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न ।

इसके अतिरिक्त कुछ टीकाएं भी मिलतीं हैं,उन्हें व्याख्यात्मक आलोचना के अन्तर्गत लिया जा सकता है, परन्तु इन टीकाओं को शुद्ध व्याख्याात्मक आलोचना के अन्तर्गत नहीं लिया जा सकता। भक्ति काल में सूरदास की साहित्यलहरी तथा नन्ददास की रसमंजरी में नायक–नायिका भेद की चर्चा तो मिलती है परन्तु इन्हें शुद्ध आलोचना के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता, क्योंकि इनमें काव्यांग विवेचन नहीं के बराबर है तथा भक्ति भावना का अधिक वर्णन है।इसी प्रकार रहीम की बरवे नायिका भेद, तथा नाभा दास की भक्तमाल, में भी काव्यांग विवेचन कम होने के कारण इन्हें आलोचना के अन्तर्गत नहीं लाया जा सकता। इस तरह इस काल में साहित्यलहरी व रसमंजरी को छोड कर किसी भी रचना को आलोचना के अन्तर्गत नहीं लाया जा सकता । इससे एक बात तो साफ है कि इस काल में बेशक आलोचना की उच्च कोटी की रचनाओं का अभाव है परन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि आलोचना प्रारम्भिक स्वरूप इस काल में ही दिखाई देने लग गया था। आलोचना का सही अर्थों में विकास रीति काल में ही दिखाई देता है।

रीति काल में आलोचना का विकास

रीति काल में काव्यसिद्धान्तों या काव्यांगों का विवेचन करने वाले अनेक ग्रंथ मिलते हैं। वास्तव में केशवदास को इस काल की सैद्धान्तिक आलोचना का सूत्रपात करने वाला कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। कवि पद्माकर को इस श्रृंखला की अन्तिम कडी कहा जा सकता है। इस काल के प्रमुख आलोचनात्मक ग्रंथों में– कविप्रिया, रसिकप्रिया, केशवदास की रचनाएं, तथा चिन्तामणि की कवि कुल कल्पतरु, रसमंजरी, पिंगल, देव की– रसविलास, भावविलास, शब्दरसायन, भिखारीदास की– श्रृंगार निर्णय, काव्यनिर्णय पद्माकर की जगद्विनोद तथा मतिराम की ललितललाम, रसराज प्रमुख हैं । इसके अतिरिक्त अन्य और भी आलोचनात्मक रचनाएं उपलब्ध हैं।कुलपति मिश्र, सोमनाथ, रसिक गोबिन्द, ग्वालकवि, रसलीन, आदि अन्य प्रमुख कवि हैं, जिन्होंने आलोचनात्मक ग्रंथ लिखे। इसके अतिरिक्त अन्य लेखक भी हैं जिन्होंने स्वतंत्र रूप से सैद्धान्तिक आलोचना को आधार बना कर आलोचनात्मक ग्रंथों की रचना की।3

3 आधुनिक काल में आलोचना का विकास

इस काल में भी हिन्दी आलोचना का समुचित विकास देखने को मिलता है। इस काल की आलोचना की खास बात यह है कि इस काल में रीति कालीन आलोचना पद्धति से निकल कर एक नए मार्ग की ओर प्रशस्त होती दिखाई देती है।इसके मुख्य कारण गद्य का आविर्भाव, पत्रपत्रिकाओं का प्रचलन, पाश्चात्य समीक्षाजगत से सम्पर्क, तथा पाठकों में चेतना का विकास हो सकता है। इस काल की आलोचना को निम्न लिखित उपभागों में बांटा जा सकता है–

1 भारतेन्दु युग 2 द्विवेदी युग,3 शुक्ल युग 4शुक्लोत्तरयुग ।

1 भारतेन्दु युग–

इस युग से ही कुछ विद्वान हिन्दी आलोचना का विकास मानते हैं। इस युग में सैद्धान्तिक आलोचना के साथ व्यावहारिक आलोचना के भी दर्शन होते हैं। सैद्धान्तिक आलोचना में भारतेन्दु का नाटक सबसे पहले गिनने योग्य है।इस ग्रंथ में नाटक से सम्बन्धित चर्चा की गई है। इसके उपरान्त हिन्दी सैद्धान्तिक आलोचना के विकास में जिनका महत्व पूर्ण योगदान रहा उनका उल्लेख करना आवश्यक है। जगन्नाथ प्रसाद भानु, गंगा प्रसाद अग्निहोत्री, साहब प्रसाद सिंह, बिहारी लाल जगन्नाथ प्रभाकर आदि के नाम मुख्य हैं।

नागरी प्रचारिणी सभा पत्रिका के माध्यम से अनेक साहित्यकारों के जीवन, रचना प्रामाणिकता आदि के विषय में अनेक व्यावहारिक समीक्षात्मक ग्रंथ प्रकाश में आए। शिव सिंह सेंगर की रचना शिवसिंह सरोज इसी व्यावहारिक आलोचना का प्रारम्भिक रूप है। कुछ पत्र पत्रिकाओं ने भी इस युग में आलोचना में महतवपूर्ण योग दान दिया। बदरीनारायण प्रेमघन ने हिन्दी प्रदीप तथा आनन्द कादम्बिनी नामक पत्रों में श्रीनिवास कृत संयोगिता स्वयंवर, तथा बंग विजेता की विस्तृत समीक्षा की।

2 द्विवेदी युग

सन् 1900 में हिन्दी पत्रिका सरस्वति का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ।आचार्य महावीर प्रसाद के सम्पादन में पर्याप्त आलोचना हुई। इसमें पुस्तक समीक्षा नामक एक स्तम्भ रखा गया, और स्वयं पुस्तकों की समीक्षा प्रारम्भ की। बनारस से प्रकाशित सुदर्शन तथा जयपुर से प्रकाशित समालोचक पत्र में भी अनेक रचनाओं की समीक्षा की गई। द्विवेदी युग में हिन्दी आलोचना के मुख्यतः निम्न लिखित रूप दिखाई देते हैं–

क शास्त्रीयआलोचना ख तुलनात्मक आलोचना ग परिचयात्मक आलोचना घ व्याख्यात्मक आलोचना

क शास्त्रीय आलोचना के अन्तर्गत जगन्नाथ भानुकी रचना काव्य प्रभाकर छंद सारावली तथा लाला भगवान दीन की रचना अलंकार मंजूषा मुख्य हैं।

ख तुलनात्मक आलोचना के लिए द्विवेदी काल को उद्भव काल कहा जा सकता है।हिन्दी में तुलनात्मक आलोचना का श्रीगणेश पद्म सिंह शर्मा द्वारा माना जाता है। मिश्र बन्धुओं ने हिन्दी

नवरत्न के प्रकाशन के माध्यम से तुलनात्मक आलोचना का विकास किया।

ग परिचयात्मक आलोचना–स्वयं आचार्य द्विवेदी ने अपने पत्र सरस्वती में परिचयात्मक आलोचना लिखी आचार्यद्विवेदी निडर आलोचक थे तथा किसी भी कृति में स्पष्ट रूप से पक्षपात के बिना 3दोष निकाल कर सामने ले आते थे।उनकी आलोचना में खण्डन मण्डन की प्रवृत्ति साफ दिखाई देती है।

घ व्याख्यात्मक आलोचना–

बालकृष्ण भट्ट ने हिन्दी प्रदीप पत्र में नीलदेवी, परीक्षागुरु, संयोगिता स्वयंवर की व्याख्यात्मक आलोचना करके इसका विकास किया। बालमुकुन्द गुप्त ने हिन्दी बंगवासीपत्र में अश्रुमतीनाटक, की व्याख्यात्मक आलोचना की। किशोरी लाल गोस्वामी कृत उपन्यास तारा की व्याख्यात्मक समीक्षा समालोचक पत्र में तथा श्रीनिवास कृत परीक्षागुरु की समीक्षा छत्तीसगढ मित्र में प्रकाशित हुई।4

3 शुक्ल युग

हिन्दी आलोचना में शुक्ल युग को सबसे बेहतर युग माना जाता है।आचार्य शुक्ल ने द्विवेदी युग में ही आलोचना जगत में आए, परन्तु अपनी अलौकिक प्रतिभा के कारण हिन्दी के सर्वोच्च शिखर पर पहुंच कर हिन्दी आलोचना को भी विकसित किया।शुक्ल जी ने हिन्दी आलोचना को वैज्ञानिकता प्रदान की। हिन्दी आलोचना के इस काल को उसके उत्थान का तृतीयकाल कहा है। उन्होंने लिखा है कि– तृतीय उत्थान में समालोचना का आदर्श भी बदला, गुण–दोष के कथन के आगे बढकर कवियों की विशेषताओं और अन्तः प्रवृत्तियों की छानबीन की ओर भी ध्यान दिया गया।

आचार्य शुक्ल के समय में प्रचलित द्विवेदी–युगीन नैतिकता और इतिवृत्तात्मकता के विरोध में छायावाद का उदय हो चुका था।नए युग और नई प्रवृत्ति के लिए नए प्रकार की आलोचना की आवश्यकता थी। इस समय अब नवीन काव्य एवं अन्य साहित्य के लिए पुरानी काव्यशास्त्रीय पद्धति पर मूल्यांकन करना सम्भव नहीं था।आचार्य शुक्ल ने आलोचना की बागडोर अपने हाथ में लेकर आलोचना का केन्द्र हिन्दी के भक्तिकाल को बना दिया,तथा स्वयं तुलसी, सूरदास, व जायसी पर विस्तृत समीक्षाएं लिखीं। कविता में अनुभूति को प्रधानता प्रदान की। इस काल में शुक्ल कालीन हिन्दी आलोचना का अवलोकन दो भागों में बांट कर किया जा सकता है।5

क सिद्धान्त या लक्षणग्रंथ की रचना तथा सैद्धान्तिक आलोचना।

ख व्यावहारिक आलोचना

क– सैद्धान्तिक आलोचना

शुक्ल काल में भी कुछ लक्षण ग्रंथों की रचना हुई तथा काव्यांगों का विवेचन हुआ। शुक्ल जी ने इस काल में आलोचना के क्षेत्र में सर्वाधिक योगदान दिया। इससे पूर्व द्विवेदी युग में भी उनकी आलोचनात्मक रचनाएं– कविता क्या है,तथा साहित्य आदि आ चुकी थीं।उनकी सैद्धान्तिक आलोचना की कृति –काव्य में रहस्यवाद ,रसमीमासा भी इसी युग में प्रकाशित हुई।

आचार्य शुक्ल के इलावा गुलाब राय की नवरस,विश्वनाथ प्रसाद मिश्र की काव्यांग कौमुदी, श्यामसुन्दरदास की साहित्यालोचन, लक्ष्मी नारायण सुधांशु की रचना– काव्य में अभिव्यंजनावाद, रमाशंकर शुक्ल रसाल की रचना आलोचनादर्श, डॉ रामकुमार वर्मा की साहित्य समालोचना विशेषतः उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त भगवानदीन कन्हैयालालपोद्दार आदि का नाम भी सैद्धान्तिक आलोचना में लिया जा सकता है।

ख –व्यावहारिक आलोचना

इस युग में शुक्ल जी ने ही व्याख्यात्मक आलोचना में गोस्वामी तुलसी दास,तुलसी ग्रंथावली आदि के द्वारा कवि के काव्यगुणों का परिचय करवाया। इसी तरह भ्रमर गीत सार का भी शुक्ल जी ने सम्पादन किया।

इस युग के अन्य व्यावहारिक आलोचकों में कृष्ण शंकर शुक्ल की रचना केशव की काव्य कला, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र की बिहारी की वाग्विभूति, रामकृष्ण शुक्ल की प्रसाद की नाट्य कला, डॉ रामकुमार वर्माकी कबीर का रहस्यवाद, जनार्दन मिश्र की विद्यापति, भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र की मीरां की प्रेम साधना, रामनाथ सुमन की महाकवि हरिऔघ, गुप्त जी की काव्यधारा आदि का नाम उल्लेखनीय है।

4 आधुनिक युग

शुक्ल युग के उपरान्त आधुनिक युग का कम आता है। इसकाल के प्रमुख आलोचकों में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ नगेन्द्र, डॉ राम विलास शर्मा, डॉ देवराज, डॉ देवराज उपाध्याय, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, डॉ माताप्रसाद गुप्त, डॉ सत्येन्द्र आदि का नाम विशेष उल्लेख्य है। इनमें आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी केग्रंथ– आधुनिकसाहित्य, नयासाहित्य, नए प्रश्न, कवि निराला, आदि में छायावादी काव्य की नूतन कल्पना छवियों, भावों व भाषारूपों की समालोचना की।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने ग्रंथ हिन्दी–साहित्य की भूमिका में आलोचना के नए प्रतिमान स्थापित किए। सूरसाहित्य में उनकी छायावादी भावुकता का प्राधान्य दिखाई देता है।कबीर में उनके आलोचनात्मक दृष्टिकोण का प्रायोगिक रूप स्पष्ट दिखाई देता है।

डॉ नगेन्द्र को व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक समीक्षक कहा जाता है। उनके सैद्धान्तिक ग्रंथ रस सिद्धान्त में रस का सांगोपांग वर्णन मिलता है। सुमित्रानन्दन पन्त में उन्होंने छायावादी काव्य की अन्तर्मुखी साधना, सौन्दर्य चेतना, आदि के दृष्टि कोण से पंत के काव्य की समीक्षा की है। साकेत एक अध्ययन नामक शास्त्रीय समीक्षात्मक ग्रंथ की रचना की। आधुनिक हिन्दी नाटक, विचार और अनुभूति, तथा आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियां जैसे समीक्षात्मक ग्रंथों की भी रचना की है। नयी समीक्षा–नए संदर्भ, कामायनी के अध्ययन की समस्याएं आदि उनके अन्य महत्वपूर्ण आलोचनात्मक ग्रंथ हैं।6

डॉ राम विलास शर्मा को मार्क्स वादी आलोचना का स्तम्भ माना जाता है। शिवदान सिंह चौहान बेशक इस आलोचना के प्रवर्तक माने जाते हैं, परन्तु जिस प्रकार की गवेषणात्मक दृष्टि राम विलास शर्मा की है वैसी अन्य आलोचकों की नहीं है।प्रगति और परम्परा, प्रगति शीलसाहित्य की समस्याएं, आस्था और सौन्दर्य आदि में उनके मार्क्सवादी आलोचना संबंधी दृष्टिकोण प्रस्तुत हुआ है।

आधुनिक काल में अन्य अनेक प्रकार की आलोचना की धाराएं प्रवाहित हो रहीं हैं। प्रभाववादी आलोचना,मार्क्सवादी आलोचना, मनोविश्लेषणात्मक आलोचना, स्वच्छन्दतावादी आलोचना,सैद्धान्तिक आलोचना प्रमुख हैं। हिन्दी आलोचना में आज भी निरन्तर विकास हो रहा हैं। डॉ नामवर सिंह, डॉ रामस्वरूप चतुर्वेदी, डॉ शिवप्रसाद सिंह आदि आलोचक इसके विकास में महत्व पूर्ण योगदान दे रहे हैं।

सन्दर्भ सूचि

1. विश्वनाथ त्रिपाठी हिन्दी आलोचना पृ97
2. मधुरेश हिन्दी आलोचना का विकास पृ143
3. डॉ अमर नाथ हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली पृ 148
4. नन्द किशोर नवल हिन्दी आलोचना का विकास पृ 89
5. बच्चन सिंह आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द पृ 125
6. कालू राम परिहार हिन्दी आलोचना की परम्परा और रामविलास शर्मा पृ 78